साहित्य सभ्यता और संस्कृती

डॉ. रत्नाकर रावसाहेब हुसे
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
मत्स्योदरी महाविद्यालय, अंबड जि. जालना
मो. न. 90215065226

मनुष्य ने जैसे अपने जीवन में सुधार लाने का प्रयास किया और उसे अनुभव के रूप में साहित्य ने जतन किया और समाज के हर एक संस्कृतीने उसे जपने का प्रयास किया है। ''सभ्यता शब्द का प्रयोग मानव समाज के एक सकारात्मक, प्रगतिशील और सर्वसमावेशक विकास की ओर दर्शाने के लिए किया जाता है।''[1] सभ्य समाज अक्सर विकसनशील कृषि, लंबी दूरी के व्यापार, मजबूत व्यावसायिकता, विशेषीकरण और नागरी समाज आदि की उन्नत स्थिति का प्रतिक होता है। इन मूल तत्त्वों के अलावा सभ्यता कुछ माध्यमिक तत्त्वों जैसे विकसित यातायात व्यवस्था, आधुनिक लेखन व्यवस्था, मापन के मानक साधन, विधी और कानून की व्यवस्था, कला के महान शैलियों, स्मारकों के स्थापत्य, गणित, विकसित धातुकर्म एवं खगोलविद्या आदि की स्थिति से भी व्याख्यायित होता है।

''साहित्यकार समाज में रहते हुए अपनी आँखें बन्द नही कर सकता अंतः समाज की विसंगतियाँ उसके कोमल हृदय को प्रभावित करती ही हैं और उसकी अभिव्यक्ति भी अनिवार्य रूप से वह करता है।''[2] साहित्य समाज, सभ्यता, संस्कृती यह समाज के ऐसे गुंथे हुए भाग है उन्हें अलग–अलग कर पाना बढ़ कठिण कार्य है। संस्कृति ऐसी वस्तु हैं जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं, लेकिन उसकी व्याख्या नहीं कर सकते कुछ मात्रा में वह सभ्यता से अलग गुण है। अंग्रेजी में कहावत है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास हैं, संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। जीवन उपयोगी सभी आधुनिक संसाधन जैसे मोटर, महल, सडक, हवाई जहाज, अच्छा पहनावा और अच्छा भोजन ये तथा इनके समान सारी अन्य समग्र आवश्यक वस्तुएँ, संस्कृति नहीं, सभ्यता के समान हैं। लेकिन पोशाक पहनने और भोजन करने में जो कला है, वह संस्कृति की चीज है। इसी प्रकार

आधुनिक सधान बनाने और उसका उपयोग करने जैसे मोटर, महलों का निर्माण में रुचि का परिचय देने और सडकों तथा हवाई जहाजों की रचना में जो ज्ञान लगता है, उसे अर्जित करने में संस्कृति अपने को व्यक्त करनी है। प्रत्येक सुसभ्य व्यक्ती सुसंस्कृ ही होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता; क्योंकि अच्छी पोशाक पहननेवाला आदमी भी तबियत से नंगा हो सकता है और तबियत से नंगा होना संस्कृति के खिलाफ बात है और यह भी नहीं कहा जा सकता कि हर सुसंस्कृत आदमी सभ्य भी होता है, क्योंकि सभ्यता की पहचान सुख–सुविधा और ठाठ–बाट है। मगर बहुत से ऐसे लोग हैं जो सड़े–गलें झोंपडों में रहते हैं, जिनके पास काफी कपडे भी नहीं होते और न कपड़े पहनने के अच्छे ढ़ग ही उन्हें मालूम होते हैं लेकिन फिर भी उनमें विनय और सदाचार होता है, वे दूसरों के दु:ख से दु:खी हाते है तथा दूसरों का दु:ख दूर करने के लिए वे खुद मुसिबत उठाने को भी तैयार रहते है।

''डॉ. प्रकाश चन्द गुप्त का यह कथन नागार्जुन के कृतित्त्व की सही व्याख्या करता है – ''नागार्जुन ऐसे साहित्यकार हैं जो अभावों में ही जनमें है, पीड़ित वर्ग के कष्टों को उन्होंने स्वयं झेला है। निस्सन्देह ऐसा ही व्यक्ति भारत की निम्नवर्गीय जनता का सच्चा सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व कर सकता है।''[3] आदिवासी जनता पूर्णरुप से सभ्य तो नहीं कही जा सकती क्योंकि सभ्यता के बड़े–बड़े उपकरण उसके पास नहीं हैं, लेकिन दया–माया, सच्चाई और सदाचार उनमें कम नहीं हैं। इसलिए उन्हें सुसंस्कृत समझने कोई हरज नहीं होना चाहिए। प्राचीन भारत में ऋषिमूनी जंगलों में रहते थे और जंगलों में वे कोठे और महल बनाकर नहीं रहते थे। फूस की झोंपड़ियों में वास करना, जंगल के जीवों से दोस्ती और प्यार करना, किसी भी मो काम को अपने हाथों से करने में हिचकिचाहट नहीं दिखाना, पत्तों में खाना और मिट्टी के बर्तनों में रसोई पकाना, यही उनकी जिंदगी थी और लक्षण आज की यूरोपीय परिभाषा के अनुसार सभ्यता के लक्षण नहीं माने जाते हैं। फिर भी वे ऋषिगण सुसंस्कृत ही नहीं थे, बल्कि वे हमारी जाति की संस्कृति का निर्माण करते थे। सभ्यता और संस्कृति में यह एक मौलिक भेद है, जिसे समझे बिना हमें कहीं–कहीं कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है।

लेकिन यह कठिनाई कहीं–कहीं ही आती है। साधारण नियम यही है कि संस्कृति और सभ्यता की प्रगति अधिकार एक साथ होती है और दिनों का एक–दूसरे पर प्रभाव भी पड़ता रहता है। जैसे, हम जब कोई घर बनाने लगते हैं, तब स्थुलरुप से यह सभ्यता का कार्य होता है। मगर, हम घर का कौन–सा कौन–सा नक्शा पसंद करते हैं, इसका निर्णय हमारी सांस्कृतिक रूचि करती है। और, संस्कृति की प्रेरणा से हम जैसा घर बनाते हैं, वह फिर हमारी सभ्यता का अंग बन जाता है। इस प्रकार सभ्यता का संस्कृति पर और संस्कृति का सभ्यता पर पड़नेवाले प्रीााव का क्रम निरंतरर चलता ही रहता है।

निष्कर्ष यह है कि संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहनी है, जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगंधा और सभ्यता की अपेक्षा यह टिकाऊ भी अधिक है, क्योंकि सभ्यता की सामग्रियाँ टूट–फूटकर विनष्ट हो सकती हैं, लेकिन संस्कृति का विनाश उतनी आसानी से नहीं किया जा सकता। इसलिए बाणभट्ट की आत्मकथा में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते है, ''संस्कृति' जीवन के उन उदात्त मूल्यों का समुच्चय है जो हमारे समग्र क्रिया व्यवहार को नियंत्रित एवं निर्देशित करते हैं।''

अंतः हम कह सकते है कि मनुष्य समाज में जो वर्तन करता है वह उस पर हुए संस्कार और उसके सभ्य के कारण होते हैं। अर्थात वह मूल्य देकर खरीदे नहीं जाते, तो आस–पास की वातावरण से मिलते हैं।

संदर्भ :

1. संस्कृति और सभ्यता – राम शरण शर्मा, पृ. 47.
2. नागार्जुन का व्यक्तित्त्व – डॉ. चरण, पृ. 119.
3. हिंदी साहित्य का इतिहास – राजकमल प्रकाशन, पृ. 110.